॥ ओ३म् ॥

तत्सत्परब्रह्मणेनमः ॥

अथ वैशेषिकदर्शन भाषानुवाद

अर्थात्

पदार्थ निरूपण

—०(०)०—

महामुनि कणाद प्रणीत ॥

उत्तिष्ठत जाग्रतप्राप्य वरान्निबोधत क्षुरस्यधारा
निशिता दुरत्यया दुर्गम्पथस्तत्कवयो
वदन्ति ॥ कठोपनिषद् ॥

श्री पण्डित सूर्यदत्त शर्मा मुख्याधिष्ठाता गुरुकुल
विद्यालय होशंगाबाद द्वारा अनुवादित
व प्रकाशित ॥

Printed by B. Kashi Prasad at the Shanti
Press Fatehgarh.

प्रथमावृति ५०० ॥ मास आषाढ़ १९७० वि० ॥ मू० ।-)

२५३५

भूमिका

पाठकवर्ग। आर्य्यावर्त्त के महर्षिगण अपने तपो बल द्वारा ऐसे ग्रन्थ रूप महान् रत्नों को बना गये हैं जिन जानने से मनुष्य धन धान्यादि ऐश्वर्य को कौन कहे मो तक प्राप्त कर सक्ता है परन्तु वे रत्न देववाणी में हो से अधिकांश जनों को प्राप्त नहीं होते अतएव सर्वसाध रण के उपकारार्थ उन रत्नों में से प्रथम वैशेषिक दर्श रूपी रत्न का सरल संक्षिप्त भाषानुवाद प्रकाशित किर जाता है आशा है कि इससे विशेष नहीं तो कुछ (हिन भाषाभाषीसज्जनों का) अवश्य उपकार होगा ॥ पुस्त के लिखने में अन्यान्य विद्वानों के टीकाओं के अतिरि श्री पं० तुलसीराम स्वामी जी कृतभाष्य से विशेष सहा यता प्राप्त हुई है अतः मैं पं० जी का अतिकृतज्ञ हूं अन्तिम प्रार्थना यह भी है कि यदि भ्रमवश कहीं कुछ त्रु हुई हो तो सज्जनगन कृपया सुधार कर पढ़ेंगे। ॥इति

॥ विज्ञप्ति ॥

मान्यवर। आर्यज्ञानोदय का द्वितीय भाग आपकी सेवा प्रेषित किया जाता है शेष ४ भाग भी क्रमशः भेजे जायं जो महाशय सर्वभाग लेना चाहें वे कृपया सर्वाङ्कों मूल्य १।) शीघ्र भेजदें। और जो न लेना चाहें वे पुस्तक अवश्य वापस भेज दें ॥ भवदीयः— सूर्यदत्त शर्मा प्रका आर्यज्ञानोदय ग्रन्थमाला होशंगाबाद म० प्र० ॥

॥ ओ३म् ॥

अथ वैशेषिकदर्शन-भाषानुवाद॥

ईश्वर प्रार्थना

ओ३म्-यो देवोऽग्नौ योऽप्सु यो विश्वं भुवनमाविवेश । य ओषधीषु वनस्पतिषु तस्मै देवाय नमो नमः ॥१॥

इस शास्त्र के कर्त्ता महामुनि कणाद हैं अतः मुनि के नाम पर कणाद दर्शन तथा विशेष पदार्थों के वर्णन करने से "वैशेषिक दर्शन,, भी कहते हैं। इस शास्त्र का मुख्य उद्देश्य यह है कि सांसारिक छ पदार्थों के तत्त्वज्ञान से मोक्ष होता है। उन्हीं छओं का वर्णन इस में आचार्य ने किया है जोकि क्रमशः लिखा जाता है।

प्रतिज्ञासूत्र—अथाऽतो धर्मं व्याख्यास्यामः ॥ १।१। १॥

आचार्य कहते हैं कि—अब इससे आगे धर्म को हम कहेंगे॥

(२) धर्म का निरूपण—यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः ॥१।१।२॥

जिससे अभ्युदय तथा मोक्ष प्राप्त हो वह धर्म है।

(३) धर्म ज्ञान के लिये प्रमाण—तद्वचनादाम्नायस्य प्रामाण्यम् ॥ १। १। ३ ॥

धर्म का वर्णन होने से वेदादि शास्त्रका प्रामाण्य है अर्थात् वेदों में मनुष्यों के सुख तथा मोक्ष प्राप्ति के लिये धर्मानुष्ठान का वर्णन है अतः धर्म जिज्ञासू धर्म ज्ञान के लिये वेद का प्रमाण माने। एव धर्म शास्त्र में महर्षि मनुने भी कहा है॥ धर्मजिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रुतिः॥ २। १३॥ वेद प्रणिहितो धर्मः अधर्मस्तद्विपर्ययः॥ ।॥ इत्यादि शास्त्रों में मनुष्यों की मुक्ति के लिये क्या साधन बतलाये गये हैं सो लिखते हैं॥

(४) पदार्थ वर्णन— धर्म विशेष प्रसूताद्द्रव्यगुणकर्मसामान्यविशेषसमवायानां पदार्थानां तत्त्वज्ञानान्निः श्रेयसम् ॥१।१।४॥

धर्म विशेष से उत्पन्न हुये १ द्रव्य, २ गुण, ३ कर्म, ४ सामान्य, ५ विशेष और ६ समवाय इन पदार्थों के तत्त्वज्ञान से मोक्ष होता है। वैशेषिकाचार्य्य कणाद मुनि जी ने ६ ही पदार्थ माने हैं परन्तु नवीन वेदान्तियों ने एक सातवां "अभाव" भी पदार्थ माना है जिसका वर्णन पाठकों के जानने के लिये अन्त में दिया गया है। पूर्वोक्त ६ पदार्थों में से प्रथम द्रव्य पदार्थ का वर्णन करते हैं।

(५) द्रव्य विभाग—पृथिव्यापस्तेजोवायुराकाशंकालो दिगात्मा मन इति द्रव्याणि ॥१।१।५॥

पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश, काल, दिशा, आत्मा और मन ये ९ द्रव्य हैं।

द्रव्य का निरूपण— क्रिया गुणवत् समवायि कारणमिति द्रव्यलक्षणम् ॥१।१।१५॥

जो क्रिया वाला और गुणों वाला हो तथा समवायि कारण हो वह द्रव्य है।

(७) पृथिवी का निरूपण—रूपरसगन्धस्पर्शवतीपृथिवी ॥२।१।१॥

रूप, रस, गन्ध, स्पर्श वाली जो है वह पृथिवी है।

(८) पृथिवी का गुण— व्यवस्थितः पृथिव्यां वै गन्धः ॥२।२।१॥

पृथिवी में गन्ध मात्र गुण है क्योंकि रूप, अग्नि, रस, जल और स्पर्श वायु के संयोग से हैं।

(९) पृथिवी के भेद— सा द्विविधा नित्याऽनित्या च। नित्या परमाणु रूपा। अनित्या कार्यरूपा ॥ त० सं० ॥

पृथिवी दो प्रकार की है नित्य और अनित्य। परमाणु रूप नित्य है और कार्य रूप अनित्य। जैसे परमाणुओं के संयोग से जो ढेला बना है वह अनित्य है क्योंकि परमाणुओं के पृथक् २ हो जाने पर वह नाश को प्राप्त हो जाता है और परमाणुओं का कभी नाश नहीं होता अतः कार्य्य रूप पृथिवी अनित्य है और परमाणुओं रूप नित्य है।

(१०) जलका निरूपण — रूपरसस्पर्शवत्य आपो द्रवाःस्निग्धाः ॥२।१।३

रूप, रस, स्पर्श वाला द्रवित तथा चिकने को जल कहते हैं।

(११) जल का गुण— अप्सु शीतता ॥२।३।५॥

जल में शीतलपन गुण है रूपादि गुण अग्नि वायु के संयोग से होते हैं।

(१२) जल के भेद— जल भी दो प्रकार का है। नित्य और अनित्य। परमाणु रूप नित्य और कार्य रूप अनित्य है। तालाब नदी आदि के जल कार्य रूप हैं अतः अनित्य हैं।

(१३) अग्नि का निरूपण— तेजो रूपस्पर्शवत् ॥२।१३॥

रूप और स्पर्श वाले को तेज (अग्नि) कहते हैं।

(१४) अग्नि का गुण— तेजस उष्णता ॥२। २।४॥

अग्नितत्त्व का गुण उष्ण है। स्पर्श गुण वायु के संयोग से है।

(१५) अग्नि के भेद— अग्नि भी दो प्रकार का है नित्य और अनित्य। परमाणु रूप नित्य और कार्य्य रूप अनित्य है।

(१६) वायु का निरूपण—स्पर्शवान् वायुः ॥२।१।४॥

स्पर्श वाला वायु है। वायु का स्पर्श विलक्षण होता है क्योंकि पृथिव्यादि पदार्थों का स्पर्शरूप के साथ होता है पर वायु का नहीं। जिस पार्थिव पदार्थ को हम स्पर्श करते हैं उस को देख भी सकते हैं। पर वायु को स्पर्श करते हुए भी नहीं देखते।

(१७) वायु का गुण—स्पर्श मात्र है।

(१८) वायु के भेद—वायु के भी दो भेद हैं नित्य और अनित्य। परमाणुरूप नित्य और कार्यरूप अनित्य है।

(१९) पृथिव्यादि के विशेष भेद—तत्पुनः पृथिव्यादि कार्यद्रव्यं त्रिविधं शरीरेन्द्रियविषय संज्ञकम् ॥४। २। १ ॥

शरीर इन्द्रिय विषय के भेद से पृथिवी, जल, अग्नि वायु के ३ भेद और हैं। गन्ध वाला शरीर पार्थिव शरीर है। गन्धवाली इन्द्रिय पार्थिव इन्द्रिय है और गन्ध युक्त विषय पार्थिव विषय है। मनुष्य, पशु, पक्षी, आदि जीवों के शरीर पृथिवी सम्बन्धी शरीर और गन्ध को ग्रहण करने वाली नासिका इन्द्रिय पृथिवी सम्बन्धी इन्द्रिय है। मिट्टी पत्थर आदि सब पृथिवी के विषय हैं। एवं जलस्थ जीवों

के शरीर जलीय रस अनुभव करने वाली इन्द्रिय जलीय इन्द्रिय हैं और नदी समुद्रादि जल के विषय हैं। तेजो मंडल में स्थित जीवों के शरीर नेत्र इन्द्रिय तैजस हैं अग्नि सूर्य्य जाठराग्नि आदि की अग्नि तैजस विषय है। वायुमंडलस्थ प्राणियों का शरीर इन्द्रियों में त्वचा वायवीय है। बाहर जो वृक्षादि को कंपाने वाला तथा शरीर के भीतर विचरनेवाला वायु है वह विषय है।

(२०) शरीरस्थ वायु के भेद—हृदिप्राणो गुदेऽपानः समानो नाभिसंस्थितः। उदानः कण्ठदेशस्थो व्यानः सर्वशरीरगः॥ ४। २॥

१ प्राण २ अपान ३ समान ४ व्यान ५ उदान ६ नाग ७ कूर्म ८ कृकल ९ देवदत्त और १० धनंजय॥ ये हैं॥

(२१) शरीर का निरूपण—चेष्टेन्द्रियार्थाश्रयः शरीरम्॥ न्यायद०। १। १॥

क्रिया इन्द्रिय और अर्थ के आश्रय को शरीर कहते हैं।

(२२) शरीर के भेद—तत्रशरीरंयोनिजमयोनिजंच॥ ४। २। ६॥

शरीर दो प्रकार का है योनिज और अयोनिज। जल अग्नि वायु से उत्पन्न शरीर आयोनिज तथा पृथिवी से उत्पन्न शरीर योनिज तथा अयोनिज भी होते हैं।

(२३) योनिज के भेद—योनिज दो प्रकार का होता है। जरायुज और अण्डज।

(२४) जरायुज का विवरण—जो गर्भझिल्ली से बंधा रहता है वह जरायुज कहाता है। मनुष्य पश्वादि के शरीर जरायुज हैं पक्षि सर्पादि के शरीर अंडज हैं।

(२५) अण्डज का निरूपण—जो अण्डे से उत्पन्न हों वे अण्डज कहाते हैं।

(२६) अयोनिज के भेद—अयोनिज शरीर भी चार प्रकार का है। १ सांकल्पिक २ सांसिद्धिक ३ स्वेदज और उद्भिज्ज ४।

(२७) सांकल्पिक—सृष्टि के आरम्भ में जो उत्पन्न हुए वे सांकल्पिक।

(२८) सांसिद्धिक— योगद्वारा योगी लोग शरीर बदलते हैं वह सांसिद्धिक है।

(२९) स्वेदज—जो गर्मी से उत्पन्न होते हैं वे स्वेदज कहलाते हैं। मच्छर डंस खटमल चिटी आदि क्षुद्र जीव स्वेदज हैं।

(३०) उद्भिज्ज—जो भूमि को फाड़ कर उत्पन्न हों वे उद्भिज्ज कहाते हैं। वृक्ष घास वनस्पति आदि उद्भिज्ज हैं।

(३१) आकाश का निरूपण—निष्क्रमणं प्रवेशनमित्याकाशस्य लिङ्गम् ॥ २ । १ । २० ॥

जिस में निकलना प्रवेश करना हो सके वह आकाश है॥ त आकाशे न विद्यन्ते ॥ २ । १ । ५ ॥ गन्धनादि गुण आकाश में नहीं है, अतः शून्य (पोल) पदार्थ का नाम आकाश है।

(३२) आकाश का गुण—शब्दगुणमाकाशम् ॥ त० सं० ॥

शब्द आकाश का गुण है। क्योंकि आकाश के विना शब्द उत्पन्न नहीं हो सका।

(३३) आकाश का नित्यत्व—जहां शब्द है वहां पर आकाश है तथा परमाणुओं से नहीं बना हैं अतः आकाश नित्य और एक पदार्थ है।

(३४) पंच भूत—पृथिव्यापस्तेजोवायुराकाशमितिभूतानि ॥ न्याय द० १ । १३ ॥

पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश ये पंचभूत भी कहाते हैं।

(३५) पंच भूतों के पंच गुण—गन्धरसरूपस्पर्शशब्दाः पृथिव्यादिगुणास्तदर्थाः ॥ न्याय द० ॥ १ । १४ ॥

गन्ध, रस, रूप, स्पर्श, शब्द ये पाचों गुण, पंच भूतोंके क्रम से हैं।

(३६) पंचभूतों से उत्पन्न पंच इन्द्रियां—घ्राण रसना चक्षुस्त्वक् श्रोत्राणीन्द्रियाणि भूतेभ्यः ॥ न्यायद० ॥

घ्राण रसना चक्षुत्वचा और श्रोत्र ये पांच इन्द्रियां पंच भूतों से उत्पन्न हुई हैं।

(३७)इन्द्रियों के पंच विषय—घ्राण नासिका के अग्रवर्त्ती तथा पार्थिव होने से पृथ्वी के गुण गन्ध का ही ग्राहक है। रसना जिह्वाग्रवर्त्ती व जलीय होने से जल के गुण रस का ही ग्राहक है। नेत्र काली पुतली के अग्रवर्त्ती तथा तैजस होने से रूप का ही ग्राहक है। त्वचा सर्व शरीर में है। और वायवीय होने से स्पर्श का ग्राहक है। श्रोत्र कर्ण विवरवर्त्ति और आकाश रूप होने से शब्द का ही ग्राहक है।

(३८) काल का निरूपण—अपरस्मिन्नपरं युगपच्चिरंक्षिप्रमिति कालालिङ्गानि ॥ २ । २ । ६ ॥

बाल, युवा, वृद्ध, सूर्य्योदय, अस्त का जिस में एक साथ शीघ्र ज्ञान होवे वह काल कहाता है।

(३९) काल का गुण—सर्व कार्यों की उत्पति, स्थिति, विनाश, और भूत, भविष्यत, वर्त्तमान आदि व्यवहारों का मुख्य कारण काल है। तथा विभु, अनादि, अनन्त एक है व्यवहार के लिये, पल, घड़ी, दिन, रात आदि उसके अनेक खंड कल्पित कर लिये जाते हैं।

(४०) दिशा का निरूपण—इत इदमितियतस्तद्दिश्यं-लिङ्गम् ॥ २ । २ । १०

इधर उधर आना जाना आदि व्यवहार जिस में हो वह दिशा है। यह पूर्व है वह उत्तर उससे वह दक्षिण आदि व्यवहार विना दिशा के नहीं बन सक्ता। अतः दिशा भी विभु नित्य एक है।

(४१) दिशा के भेद—दिशा तो एक ही है पर व्यवहार के लिये पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, आग्नेय, नैर्ऋत, वायव्य, ईशान, ऊपर, नीचे, १० भेद हैं।

(४२) आत्मा का निरूपण—ज्ञानाधिकरणमात्मा ॥ त० सू० ॥

ज्ञान जिस में नित्य रहे वह आत्मा है।

(४३) आत्मा के भेद—सद्विविधः। परमात्मा जीवात्मा चेति।

आत्मा दो प्रकार का है—परमात्मा और जीवात्मा।

(४४) परमात्मा का निरूपण—क्लेश कर्म विपाकाशयैर परामृष्टः पुरुष विशेष ईश्वरः॥ योग० १ । २४ ॥

जो अविद्यादि क्लेश, शुभाशुभ कर्म, कर्मों के फल तथा उनकी वासनाओं से पृथक्, सांसारिक जीवों से भिन्न पुरुष विशेष है वह (ईश्वर) परमात्मा है।

(४५) परमात्मा का गुण—स हि सर्ववित्सर्वकर्त्ता ॥सां० ३ । ५६

वह प्रभु सर्वज्ञ, सर्वसृष्टिकर्त्ता, अनादि, अनन्त, सर्वव्यापक, पवित्रादि गुण युक्त एक (अद्वितीय) है।

(४६) जीवात्मा का निरूपण—प्राणाऽपाननिमेषोन्मेष जीवन मनोगतीन्द्रियान्तर विकाराः सुख दुःखेच्छाद्वेष प्रयत्नाश्चात्मनो लिङ्गानि ॥वैशे० ३ । २ । ४

प्राण, अपान, निमेष, उन्मेष, जीवन, मनोगति, इन्द्रियान्तर विकार, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष और प्रयत्न ये जीवात्मा के चिन्ह हैं। क्योंकि जब जीव शरीर से निकल जाता है तब ये चिन्ह नहीं पाये जाते शरीर का धर्म ज्ञान नहीं है कारण पञ्चभूत जिनसे शरीर बना है वे जड़ हैं उनमें ज्ञान नहीं यदि उनमें ज्ञान होता तो उनसे बने हुये घटादि में भी ज्ञान होता क्योंकि जैसे उनका कार्य्य पाञ्चभौतिक शरीर है वैसे ही घटादि हैं। मृतशरीर में ज्ञान न होने से भी ज्ञानादिगुण शरीर का धर्म नहीं है तथा मृतशरीर के जलाने में लोग पाप नहीं मानते और जीवित शरीर के जलाने में पाप मानते हैं इससे सिद्ध होता है कि जीवात्मा शरीर से पृथक् है। ज्ञानादि गुण इन्द्रियों के नष्ट हो जाने पर भी बना रहता है जैसे कोई मनुष्य नेत्र से प्रथम देखे हुये तथा जिह्वा से रस लिये हुये पदार्थ का इन्द्रियों के नष्ट होने पर भी स्मरण करता है अतः उक्त गुण इन्द्रियों का धर्म न होने से इन्द्रियों से भिन्न आत्मा है मन जानने का साधन है ज्ञाता नहीं अतः मन का भी गुण ज्ञान नहीं है अतएव इन्द्रिय, शरीर, मन से पृथक् ज्ञानवान् आत्मा है शरीर में ऊपर को ले जाने वाला वायु प्राण और मूत्रादि को निकालने वाला वायु अपान कहाता है आंख मीचना निमेष और खोलना उन्मेष कहाता है ये परस्पर विरोधी कर्म विना शरीराधिपति जीवात्मा के नहीं हो सकते। प्राण, अपान, उन्मेष और निमेष ये आत्मा के चिन्ह हैं इसी प्रकार जीवन मनोगति, इन्द्रियान्तरविकार, सुख, दुःख, इच्छा द्वेष और प्रयत्नादि गुण भी विना आत्मा के नहीं हो सकते अतः

इन उपरोक्त गुणों से सिद्ध होता है कि आत्मा शरीरादि से पृथक् अवश्य कोई वस्तु है ।

(४७) जीवात्मा के भेद—जीवात्मा अनेक और प्रति शरीरों में भिन्न २ अल्पज्ञ है ।

((४८) मनका निरूपण—आत्मेन्द्रियार्थसन्निकर्षे ज्ञानस्य भावोऽभावश्च मनसो लिङ्गम् ।३।२।१॥

आत्मा, इन्द्रियों और विषयों की सामीप्यता में भी ज्ञान का होना न होना मनका चिन्ह बतलाया है । क्योंकि इन्द्रियों के समीप विषयों के होने पर भी विना मन के संयोग से ज्ञान नहीं होता । जैसे हमारे नेत्रों के सामने से कई पदार्थ निकल जाते हैं तथा कान के समीप शब्द भी होते हैं पर न हम देखते न सुनते हैं जब तक कि इन्द्रियों के अतिरिक्त मनको भी उसमें न लगावें वैसे तो पढ़ते; नेत्रों से देखते तथा कुछ न कुछ कानों से सुनते भी रहते हैं । तौ क्या सर्व ज्ञानेन्द्रियों के विषयों का ग्रहण एक साथ कर सकते हैं कभी नहीं अतः सिद्ध होता है कि इन्द्रियों से भिन्न मन है । जो एक साथ अनेक विषयों का ग्रहण होने नहीं देता । एवं न्यायदर्शन में भी कहा है ।
युगपज्ज्ञानानुत्पत्तिर्मनसो लिङ्गम् १।१।१६॥

एक समय में अनेक ज्ञान का न होना मनका चिन्ह है ।

(४९) मन नित्य है वा अनित्य– तस्य द्रव्यत्व नित्यत्वे वायुना व्याख्याते ॥३।२।२

जिस प्रकार वायु द्रव्य और नित्य है तदनुसार मन भी द्रव्य और नित्य तथा सूक्ष्म है ।

(५०) मन एक है वा अनेक— प्रयत्नायौगपद्याज्ज्ञानायौगपद्याच्चैकम् । ३।२।३॥ ज्ञानाऽयौगपद्यादेकं मनः ॥

न्याय० ३।६०॥ एक समय में अनेक ज्ञान के न होने से मन एक है क्योंकि यदि अनेक मन होते तो उनका सब इन्द्रियों के साथ संयोग होने से एक काल में अनेक ज्ञान भी उत्पन्न होता, पर ऐसा नहीं होता अतः मन एक ही है।

गुणों का वर्णन ॥२॥

(५१) गुण विभाग— रूपरसगन्धस्पर्शाः संख्याः परिमाणानि पृथक्त्वं संयोगविभागौ परत्वाऽपरत्वे बुद्धयः सुखदुःखे इच्छाद्वेषौ प्रयत्नाश्च गुणाः। १। १६॥

रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व, गुरुत्व, द्रवत्व, स्नेह, शब्द, बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, धर्म और अधर्म तथा संस्कार ये २४ गुण हैं।

(५२) गुण का निरूपण—द्रव्याश्रय्यगुणवान् संयोग विभागेष्वकारणमनपेक्ष इति गुणलक्षणम्॥ १। १। १६॥

जो द्रव्य के आश्रित अन्य गुणों से भिन्न संयोग और विभाग में अपेक्षा रहित अकारण हो वह गुण कहलाता है॥ अब रूपादि २४ गुणों के निरूपणादि का वर्णन पृथक् २ किया जाता है।

(५३) रूप का निरूपण—चक्षुर्मात्रग्राह्यो गुणो रूपम्॥ त० सं०॥

नेत्र मात्र से जो ग्रहण किया जाय उसको रूप कहते हैं।

(५४) रूप के भेद—तच्च शुक्लनीलपीतरक्तहरितकपिशचित्रभेदात् सप्तविधम्॥ त० सं०॥

वह रूप शुक्ल, नीला, पीला, लाल, हरा, कपिश (काला पीला) और चित्र इन भेदों से सात प्रकार का है। जल में उज्वल और अग्नि में चमकदार व उज्वल है।

(५५) रसका निरूपण—रसनाग्राह्यो गुणोरसः॥त० सं०॥

रसना से जो मालूम हो वह गुण रस है।

(५६) रस के भेद—स च मधुराम्ललवणकटुतिक्त कषायभेदात्षड्विधः ॥ त० स० ॥

वह मीठा, खट्टा, खारा, कड़ुवा, कषैला और तीता इन भेदों से छः प्रकार का है। जो कि पृथिवी में छः प्रकार का और जल में केवल मीठा ही है।

(५७) गन्ध का निरूपण—घ्राणग्राह्यो गुणो गन्धः ॥ त० स० ॥

नासिका से जो जाना जाय वह गन्ध गुण है।

(५८) गन्ध के भेद—स च द्विविधः सुरभिरसुरभिश्च ॥ त० स० ॥

गन्ध भी सुगन्ध और दुर्गन्ध दो प्रकार का है जोकि केवल पृथिवी में रहता है।

(५९) स्पर्श का निरूपण— त्वगिन्द्रियमात्रग्राह्यो गुणः स्पर्शः ॥ त० स० ॥

जो त्वचा मात्र से मालूम हो वह स्पर्श गुण है।

(६०) स्पर्श के भेद—स त्रिविधः शीतोष्णानुष्णाशीत भेदात् ॥ त० स० ॥

वह तीन प्रकार का है शीत और ऊष्ण तथा समशीतोष्ण। वह स्पर्श गुण जल में शीतल, अग्नि में ऊष्ण और पृथिवी में समशीतोष्ण है न शीत न गर्म।

(६१) कारण के गुणों से कार्य्य के गुणों की उत्पत्ति—कारण के गुणों से कार्य्य में गुण उत्पन्न होते हैं जैसे सफेद तन्तुओं से सफेद वस्त्र और काले से काला बनता हैं एवं रस, गन्ध, स्पर्श भी अपने कारणसे कार्य्य में आते हैं तथा गुरुत्व द्रवत्व स्नेहादि भी।

(६२) पृथिवी में पाकज रूपादि की उत्पत्ति—पृथिवी में रूप, रस, गन्ध और स्पर्श पाकज भी होते हैं अर्थात् अग्नि आदि तेज के संयोग से भी उत्पन्न होते हैं जैसे पके हुये फलों के रूप, रस, गन्ध व स्पर्श बदल जाते हैं क्यों कि वह पाक से पैदा हुए हैं एवं पके हुये घड़े के भी रूपादि बदल जाते हैं।

(६३) संख्या का निरूपण—एकत्वादि व्यवहारहेतुः संख्या ॥ त० सं० ॥

एक दो आदि व्यवहार का जो कारण है वह संख्या है॥

(६४) संख्या के भेद—नवद्रव्यवृत्तिः । एकत्वादि परार्ध पर्यन्ता ॥

संख्या नव द्रव्यों में स्थित रहती है एक से लेकर परार्ध तक होती है। एकत्व संख्या नित्य द्रव्यों में नित्य और अनित्य द्रव्यों में अनित्य है और आत्मादि नित्य पदार्थों में एकत्व नित्य घट पटादि में रहने वाला एकत्व अनित्य है। और द्वित्वादि संख्या सर्वत्र अनित्य है जैसे एक ब्रह्म एक जीव एक घट एक वृक्षादि संख्या नित्य और अनेक वृक्षादि घट अनित्य हैं क्यों कि नाश होने पर एक ही संख्या रह जाती है। द्वित्व त्रित्वादि नहीं। संख्या कहां तक हो सक्ती है इस की कोई अवधि नहीं है पर व्यवहार के लिये परार्ध तक मानली गई है। संख्या, नित्य, अनित्य, मूर्त्त, अमूर्त्त सब द्रव्यों में रहती है॥

(६५) परिमाण का निरूपण—मानव्यवहारासाधारणं कारणंपरिमाणम् ॥ त० सं० ॥

नापने के व्यवहार का कारण परिमाण है।

परिमाण के भेद—तच्चतुर्विधम् अणुमहत्दीर्घह्रस्व-श्चेति ॥ त० सं० ॥

से पूर्व काशी है। ज्येष्ठ से परे आषाढ़ है। वह उससे बड़ा और उससे छोटा है। दैशिक और कालिक सब परत्व और अपरत्व अपेक्षा बुद्धि से उत्पन्न होता है और बुद्धि के नाश से नाश होता है।

(८२) गुरुत्वका निरूपण—आद्यपतनासमवायिकारणं गुरुत्वम् ॥ त० सं० ॥

किसी पदार्थ के गिरने का निमित्त कारण गुरुत्व कहलाता है। पृथिवी और जल में रहता है। वायु में गुरुत्वपन पृथिवी व जलीय रेणुओं के संयोग से होता है।

(८३) गुरुत्व नित्य है वा अनित्य—गुरुत्व नित्यों में नित्य और अनित्यों में अनित्य है।

(८४) द्रवत्वका निरूपण—स्यन्दनासमवायिकारणंद्रवत्वम् ॥ त० सं० ॥

चूने का असमवायि कारणद्रवत्व है।

(८५) द्रवत्वके भेद—तद्द्विविधं सांसिद्धिकं नैमित्तिकं चेति।

द्रवत्व दो प्रकार का है स्वाभाविक और नैमित्तिक। जल में स्वाभाविक और घृतादि पार्थिव पदार्थों में नैमित्तिक है अग्नि के संयोग से उत्पन्न होता है। और नित्यों में नित्य व अनित्यों में अनित्य है।

(८४) स्नेह का निरूपण—चूर्णादिपिण्डीभावहेतुर्गुणः स्नेहः ॥ त० स० ॥

पिसी हुई वस्तु को एकत्रित करना (पिण्ड) बना देना स्नेह गुण है। केवल जल में रहता है। और नित्यों में नित्य व अनित्यों में अनित्य है॥

(८५) शब्द का निरूपण—श्रोत्रग्रहणयोऽर्थः स शब्दः ॥ २। २। २१ ॥ श्रोत्रोपलब्धिर्बुद्धिनिर्ग्राह्यः प्रयोगेणाऽभिज्वलितआकाश देशः शब्दः ॥ महाभाष्य ॥

जो कान से सुनाई दे बुद्धि से ग्रहण किया जाय प्रयोग से प्रकाशित और आकाश जिस का देश है वह शब्द कहाता है।

(८६) शब्द के भेद—स द्विविधः ध्वन्यात्मको वर्णात्मकश्चेति । ध्वन्यात्मको भेर्य्यादौ । वर्णात्मकः संस्कृतभाषादिरूपः ॥

शब्द दो प्रकार का है ध्वन्यात्मक और वर्णात्मक। ध्वनिरूप नकारे दीणादि में और वर्ण स्वरूप मनुष्यों की भाषाओं में होता है।

(८७) शब्द नित्य है वा अनित्य—द्वयोस्तु प्रवृत्त्योर भावात् ॥ २ । २ । ३३ ॥ सम्प्रतिपत्तिभावाच्च ॥ २ । २ ।३५

दोनों की प्रवृत्तियों के अभाव तथा याथातथ्य (ठीक२) स्मरण करने से शब्द नित्य है यदि अनित्य होता तो गुरु के उच्चारित शब्द को शिष्य कथन न कर सक्ता क्योंकि शब्द तो उत्पन्न होते ही नष्ट हो जाता किन्तु ऐसा न होने से तथा एक के कहे हुये को सुनकर दूसरा ठीक २ स्मरण करके तदनुसार कहता है अतः शब्द नित्य है।

(८८) शब्द की उत्पत्ति—संयोगाद्विभागाच्छब्दाच्च शब्दनिष्पत्तिः । २ । २ । ३१ ॥

संयोग और विभाग तथा शब्द से भी शब्द उत्पन्न होता है। क्योंकि दूरस्थ शब्दों के सुनने के लिये कान शब्दोत्पत्ति स्थान तक जाते नहीं और शब्द गुण, क्रिया रहित होने से आसक्ता नहीं पर सुनाई पड़ता है अतः सिद्ध है कि जैसे पानी में ढेला फेंकने से एक लहर अन्य लहरों को उत्पन्न करती जाती है एवं शब्द से भी शब्द

उत्पन्न होता हुआ तारवत् दूर तक चला जाता है। जैसे लहर ज्यों २ दूर जाकर न्यून होती जाती है तदनुसार शब्द भी ज्यों २ दूर जाता है त्यों २ कम होता जाता है।

(८९) बुद्धि का निरूपण—सर्वव्यवहारहेतुर्ज्ञानं बुद्धिः। ॥ त० सं० ॥

संसार के सभी कार्यों के ज्ञान का कारण बुद्धि है।

(९०) बुद्धि के भेद—सा द्विविधा स्मृतिरनुभवश्च ॥

बुद्धि दो प्रकार की है स्मृति और अनुभव ॥

(९१) स्मृति | का निरूपण—संस्कारमात्रजन्यं ज्ञान स्मृतिः ॥

संस्कार मात्र से उत्पन्न जो ज्ञान वह स्मृति कहाती है।

(९२) स्मृति के भेद—स्मृति के २७ भेद न्याय दर्शन में प्रतिपादन किये गये हैं। यथा—प्रणिधान, निबन्ध, अभ्यास, लिङ्ग, लक्षण, सादृश्य, परिग्रह, आश्रय, आश्रित, सम्बन्ध' आनन्तर्य्य, वियोग, एक कार्य, विरोध, अतिशय, प्राप्ति, व्यवधान, सुख, दुख के कारण, इच्छा, द्वेष, भय, अर्थित्व क्रिया, राग, धर्म, अधर्म। उपरोक्त प्रकार से स्मृति होती है।

(९३) अनुभव के भेद—अनुभव के दो भेद हैं यथार्थ और अयथार्थ। अर्थात् सत्य और असत्य। यथार्थ ज्ञान को विद्या अयथार्थ ज्ञान को अविद्या कहते हैं।

(९४) यथार्थानुभव के भेद—प्रत्यक्ष, लैङ्गिक और आर्ष ये तीन हैं।

(९५) प्रत्यक्ष का निरूपण—इन्द्रियार्थसन्निकर्षजन्यं ज्ञानं प्रत्यक्षम् ॥ त० स० ॥

इन्द्रियों और पदार्थों के संयोग से जो निश्चय रूप ज्ञान हो वह प्रत्यक्ष है। जैसे चक्षु इन्द्रिय और घट पदार्थ इन दोनों के संयोग से घट का प्रत्यक्ष होता है।

(९६) प्रत्यक्ष के भेद—वह प्रत्यक्ष दो प्रकार का है बाह्येन्द्रिय प्रत्यक्ष और मानसिकप्रत्यक्ष। स्थूल (घटादि) पदार्थों का ज्ञान बाह्येन्द्रिय से और सूक्ष्म सुख, दुःख, चेतनत्वादि गुणों तथा आत्मा का ज्ञान मानसिक प्रत्यक्ष से होता है।

लैंगिक ज्ञान का निरूपण—अस्येदं कार्यं कारणं, संयोगि, विरोधि, समवायि, चेति लैङ्गिकम् ॥९।२।१॥

कार्य्य को देख कर कारण का, कारण को देख कर कार्य्य का, संयोग को देखकर संयोगी का, विरोध को देख कर विरोधी का और समवाय को देख कर समवायी का जो ज्ञान होता है वह लैङ्गिक (आनुमानिक ज्ञान) है। जैसे नदी की बाढ़ को देख कर पूर्व हुई वृष्टि का ज्ञान, बादलों का चढ़ाव देख कर होने वाली वर्षा का ज्ञान। यहां नदी का बढ़ना वर्षा का कार्य्य और वृष्टि होना वर्षा का कारण है तथा बादलों का उठना वर्षा का कारण और वृष्टि होना वर्षा का कार्य्य है इत्यादि।

आर्ष ज्ञान का निरूपण—आप्तोपदेशः शब्दः॥ न्याय० ।१।७॥

ऋषियों के उपदेश से जो यथार्थ ज्ञान उत्पन्न होता है वह शब्द (आर्ष) ज्ञान है।

(९९) आर्ष ज्ञान का भेद—सद्विविधो दृष्टादृष्टार्थत्वात् ॥ न्याय० १।८॥

यह आर्ष ज्ञान दो प्रकार का है दृष्टार्थ जो लोक में देख पड़े जैसे भौतिक पदार्थादि और अदृष्टार्थ जो लोक में

देख न पड़े जैसे आत्मादि। उक्त प्रत्यक्षादि ज्ञानों को प्रमाण भी कहते हैं।

(१००) अयथार्थानुभव के भेद—तीन हैं संशय, विपर्यय और तर्क।

(१०१) संशय का निरूपण—एकस्मिन् धर्मणि विरुद्धनानाधर्मवैशिष्ट्यं ज्ञानं संशयः॥ त० सं०॥

एक पदार्थ में विरुद्ध अनेक धर्मों वाला उत्पन्न ज्ञान संशय कहाता है। यह प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष दोनों में होता है जैसे दूर से स्तम्भ को देखकर संशय होता है कि यह स्तम्भ है या पुरुष। अप्रत्यक्ष में जैसे वन में सींग मात्र को देखकर संशय होता है कि यह सींग गाय का है वा गवय का। संशय समान धर्मों के देखने से होता है जैसे ऊंचाई व मोटाई स्तम्भ व पुरुष का समान धर्म दीखता है और दोनों का विशेष धर्म नहीं दीखता अतः संशय होता है विशेष धर्म के देखने से संशय मिट जाता है॥

(१०२) विपर्यय का निरूपण—विपर्ययो मिथ्या ज्ञानमतद्रूपप्रतिष्ठम्। योगः।१।८॥

उल्टे मिथ्या ज्ञान को विपर्यय कहते हैं अर्थात् पदार्थों के यथार्थ स्वरूप का ज्ञान न हो कर अन्य का ज्ञान होना यह ज्ञान भी प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष दोनों में होता है जैसे रस्सी को सर्प और सीप को चांदी का ज्ञान तथा भाफ को धुआं जान अग्नि होने का ज्ञान करना।

(१०३) तर्क का निरूपण—अविज्ञाततत्त्वेऽर्थे कारणोपपत्तितस्तत्त्वज्ञानार्थमूहस्तर्कः॥ न्याय द० । १ । ४० ॥

अविज्ञात तत्त्वार्थ में कारणोपपत्ति से तत्त्वज्ञानार्थ जो विचार किया जाय उस को तर्क कहते हैं। प्रत्येक

पदार्थ को देखते ही तर्क उत्पन्न होता है कि यह क्या है—यही संशय है।

(१०४) अविद्या के हेतु—इन्द्रियसंस्कारदोषाच्चाविद्या। ९। २। १० ॥

नेत्र, श्रोत्र, कर्ण, जिह्वादि इन्द्रियों में दोष उत्पन्न होने से और धर्माधर्मादि संस्कारों के दोष से अविद्या (विरुद्ध ज्ञान) होता है।

(१०५) अविद्या का निरूपण—तद् दुष्टज्ञानम् ॥ ९। २। ११ ॥ अनित्याऽशुचिदुःखाऽनात्मसु नित्यशुचिसुखात्मख्यातिरविद्या ॥ योग० २। ५ ॥

दोष युक्त ज्ञान को अविद्या कहते हैं अर्थात् अनित्य को नित्य, अपवित्र को पवित्र, दुःख को सुख, अनात्मा को आत्मा मानना अविद्या है।

(१०६) विद्या का निरूपण—अदुष्टं विद्या ॥ ९। २। १२ ॥ निर्दोष यथार्थज्ञान को विद्या कहते हैं ॥

(१०७) स्वप्न का निरूपण—आत्ममनसोः संयोगविशेषात् संस्काराच्च स्वप्नः। ९। २। ६ ॥

आत्मा और मन के संयोग विशेष और संस्कारों के वश से साक्षात्कार जो ज्ञान होता है वह स्वप्न है।

(१०८) स्वप्न के हेतु—स्वप्न तीन कारणों से होता है संस्कार के वेग से और धातु के दोष से तथा अदृश्य से।

(१०९) संस्कार का वेग—कामी, क्रोधी, लोभी आदि पुरुष विषय भोग, क्रोध, तृष्णादि का वेग से चिन्तन करता हुआ सो जाता है तो वही स्वप्न में देखता है।

(११०) धातु दोष—धातु के दोष से भी स्वप्न होता है जैसे वात के प्रकोप से आकाश में उड़ना, पित्त के

दोष से अग्नि में प्रवेश करना सुवर्ण पर्वत सूर्य्यादि का देखना और कफके विकार से नदी समुद्रादि में तैरना आदि पुरुष देखता है।

(१११) अदृष्ट-जो संस्कार तथा धातु दोषादि के अतिरिक्त भावी शुभाशुभ सूचक स्वप्न होता है वह अदृष्ट है।

(११२) स्वप्नान्तिक-स्वप्नान्तिकम् ॥ ९। २। ८ ॥

स्वप्नावस्था में जाने हुये अन्य स्वप्न का ज्ञान होना स्वप्नान्तिक कहाता है जैसे मैं ने कभी इसको स्वप्न में देखा था ॥

(११३) सुखका निरूपण-आत्मवशं सुखम् ॥ मनु० ॥

आत्मानुकूल कार्य सुख है वह सुख, ज्ञान, शान्ति, सन्तोष और धर्मादि से प्राप्त होता है। एवं योगदर्शन में लिखा भी है [सन्तोषादनुत्तमसुखलाभः॥२। ४२॥] सुख को प्राप्ति करना हो प्राणीमात्र का मुख्योद्देश्य है ॥

(११४) दुःखका निरूपण-बाधनालक्षणम् दुःखमिति। न्यायद० ॥ १।२१ ॥

बन्धन परतन्त्रता का नाम दुःख है ॥

(११५) दुःखके भेद-अविद्याऽस्मितारागद्वेषाऽभिनिवेशाः पञ्चक्लेशाः ॥ योग द० ॥ २।३ ॥

दुःख के पांच भेद हैं अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश ॥

(११६) अस्मिताका निरूपण-दृग्दर्शनशक्त्योरेकात्मतेवाऽस्मिता ॥ योगद० ॥ २।६ ॥

दृष्टा और दर्शनशक्ति को एक जानना अस्मिता है जैसे मैं दुखी, मैं दुर्बल, मैं कृश हूं इत्यादि ॥

(११७) रागका निरूपण—सुखानुशयी रागः ॥ योगद० ॥ २ । ७ ॥

सुख भोगने के पीछे सुख की प्राप्त न होने पर सन्ताप होने का नाम राग है ॥

(११८) इच्छाका निरूपण—इच्छाकामः ॥ त० स० ॥

अप्राप्त वस्तुओं के प्राप्ति की कामना करना इच्छा है ॥

(११९) द्वेषका निरूपण—दुःखानुशयी द्वेषः ॥ योगद० ॥ २ । ८ ॥

दुख भोगने के बाद जो भाव बना रहता है वह द्वेष है अर्थात् जिन वस्तुओं से दुःख प्राप्त होता है उनसे द्वेष होता है ॥

(१२०) प्रयत्न का निरूपण—प्रयत्नं प्रयत्नः ॥ व्य० ॥

किसी वस्तु की प्राप्ति के लिये उद्योग किया जाय उसको प्रयत्न कहते हैं ॥

(१२१) प्रयत्न के भेद—वह प्रयत्न दो प्रकार का है जीवनपूर्वक और इच्छाद्वेषपूर्वक ॥

(१२२) जीवन पूर्वक—जो निद्रावस्था में प्राणापानादि को चलाता तथा जाग्रतावस्था में मनका इन्द्रियों के साथ संयोग कराता है। वह जीवनपूर्वक प्रयत्न है।

(१२३) इच्छाद्वेष पूर्वक—सुखकी प्राप्ति के लिये प्रयत्न इच्छापूर्वक और दुःखके परित्याग में द्वेषपूर्वक होता है।

(१२४) धर्म का निरूपण—यतोऽभ्युदयनिःश्रेयस सिद्धिः स धर्मः ॥ १।२ ॥

जिससे लोक में अभ्युदय और परलोक में निस्सन्देह मोक्ष प्राप्त हो वह धर्म है। वह धर्म वेदविहित कर्मों के करने से प्राप्त होता है धृतिः, क्षमा, दम, अस्तेय, शौच, इन्द्रियनिग्रह, धीः, विद्या, सत्य और अक्रोध ये धर्म के दश लक्षण महर्षि मनु ने बताये हैं।

(१२५) अधर्म का निरूपण—निषिद्ध कर्म जन्योऽधर्मः॥ त० सं० ॥

निषिद्ध कर्मों का करना अधर्म है। जैसे हिंसा, चोरी, व्यभिचार और द्रोहादि।

(१२६ संस्कार का निरूपण—संस्कारस्त्रिविधः—वेगो-भावना स्थितिस्थापकश्चेति ॥ त० सं० ॥

संस्कार तीन प्रकार का है वेग, भावना और स्थितिस्थापक।

(१२७) वेग—पृथिवी, जल, अग्नि, वायु और मन इन पांच द्रव्यों में कर्म से उत्पन्न होता है वह वेग है।

(१२८) भावना—अनुभव से उत्पन्न स्मृति का कारण भावना है।

(१२९) स्थितिस्थापक—अन्य प्रकार से किये हुये पदार्थ का फिर उसी अवस्था में लाने वाला संस्कार स्थिति स्थापक कहाता है जैसे टेढ़ी की हुई शाखा छोड़ने पर पुनः सीधी हो जाती है

कर्म का वर्णन ॥ ३ ॥

(१३०) कर्म का निरूपण—एक द्रव्यमगुणं संयोग विभागेष्वनपेक्षकारणमिति कर्मलक्षणम् ॥ १ । १ । ७ ॥

जो एक द्रव्य वाला गुणों में भिन्न संयोग और विभागों में अनपेक्ष कारण हो वह कर्म है।

राम निरंजानन्द ...
मन्दर्भ
... ग्रन्थ क्रमांक 2535

नयनामृतांजन (सुरमा)

यदि नेत्रों की रक्षा करनी है तो नयनामृतांजन का नित्य व्यवहार करें। हमारे नयनामृतांजन के प्रतिदिन सेवन से नज़र की कमज़ोरी, दूर की वस्तु का ठीक न दीखना आदि रोगों को लाभ होता है। थोड़े दिनका जाला, फूली, धुन्ध, ढलका, नजला, नेत्रों की सुर्खी आंखों का दुखना जलन आंखों में चिपचिपाहट रतौंधी इत्यादि रोगों को फायदा करता है इसके नित्य व्यवहार करने से आंखों की ज्योति बुढ़ापे तक क़ायम रहती है। मूल्य फी शीशी १) रु० ६ शीशी का ५॥) रु० ३ शीशी का २॥)

मुफ़्त ! इनाम !! उपहार !!!

शरीररक्षा—(तन्दुरस्ती) धन, काम, प्रतिष्ठा बढ़ाने और सुख का मार्ग दिखाने वाले सुन्दर सुन्दर नीति के उपदेश और नये साल का बड़ा केलेंडर उन मनुष्यों को मुफ़्त में देंगे जो अपने यहां के हिन्दी जानने वालों के १० या २० नाम और पते साफ २ लिख भेजेंगे।

पता—आर्य्य वैद्य पण्डित
सूर्य्यप्रसाद शर्मा आयुर्वेदमार्त्तण्ड
(आ०१) (आ० वि० स०)
भारत हितैषी औषधालय शहर मेरठ

2535